दलित विमर्श

अर्थ व स्वरूप : –

'दलित' शब्द का स्वीकार सर्वप्रथम डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरजी ने किया। उन्होंने 1928 में 'Depressed Classes' इस शब्द के बदले 'Despised Castes' यह शब्द अस्पृशों के लिए उपयोग में लाया जिसका सीधा सरल अर्थ है – पीसा हुआ, कटा हुआ, कुचलाहुआ। इसका मराठी रूपांतर दलित इस नाम से क्रियाशील हो गया। बहिष्कृत भारत के अंकों में इस शब्द को स्थान प्राप्त हुआ। आगे चलकर अनेक संस्थाओं, समाचार पत्रों, राजकीय संगठनों ने दलित शब्दों को अपनाया और फिर यही शब्द प्रचलित हो गया। इस शब्द की व्युत्पत्ति पर हम विचार करेंगे तो संस्कृत शब्दकोशों के अनुसार 'दल' धातु में 'कृत' प्रत्यय लगाने से बना 'दलित' शब्द विशेषण का रूप धारण करता है। जिसका अर्थ है – टूटा हुआ, फटा हुआ, चीरा हुआ, खुला हुआ, एवं फैला हुआ।

विभिन्न शब्दकोशों में प्रस्तुत शब्द के विभिन्न अर्थ मिलते हैं। जैसे - दलन किया हुआ, टुकड़े-टुकड़े किया हुआ, मोड़ा हुआ, मसला हुआ, रौंदा हुआ, जो दबा रखा गया हो वह दलित है।

दलित शब्द को अनेक मान्यवरोने परिभाषाओं में बांधने का प्रयास किया है-

परिभाषाएँ –

- लक्ष्मण शास्त्री जोशी – " दलित मानवीय प्रगति में सबसे पीछडा हुआ, पीछे ढकेला गया सामाजिक वर्ग अर्थात दलित।"
- डॉ. सदा कराडे--" आर्थिक एवं सामाजिक दोनों दृश्यों से मिलकर एक सर्वसमावेशक दलित वर्ग मान लिया जा सकता है। उसमें कर्मचारी, खेती पर खपने वाले मजदूर, जीवनयापन के लिए कष्ट उठाने वाले तथा अस्पृश्य, शोषित ही दलित है।
- नामदेव ढसाल – " दलित अर्थात अनुसूचित जाति, जनजाति, बौद्ध, कामगार, खेतिहर मजदूर, गरीब किसान, घुमंतू जातियों, आदिवासी आदि।
- डॉ. प्रभाकर माचवे – " दलित ऐसे व्यक्तियों का समूह जिसका मनुष्य के नाते जीने का हक छीन लिया गया ,है जन्म से ही जिनके हिस्से में इस समाज व्यवस्था में केवल एक ही प्रकार का जीवन आया है, मानव के नाते जिनका मूल्य अस्वीकृत किया गया है वे 'दलित' है।
- कमलेश्वर – " दलित वह पूरा वर्ग है जो शोषित, प्रताड़ित, बाधित और वंचित है, जो अपने जीवन और सपनों का नियंता नहीं है। हां जिन्होंने दलित जातियों में जन्म लिया है वे सामाजिक रूप से और भी ज्यादा शोषित है।
- दलित पैंथर्स – दलित पैंथर्स के घोषणा पत्र में 'दलित कौन' उप शीर्षक के अंतर्गत परिभाषा मिलती है " दलित का मतलब है - अनुसूचित जातियां, बौद्ध, कामगार, भूमिहीन मजदूर, कृषि मजदूर, गरीब किसान, खानाबदोश जातियां, आदिवासी और नारी समाज"

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं को देखने के बाद हम कह सकते हैं कि जिन लोगों को स्पर्श तो दूर केवल छाया से भी ब्राह्मण स्वयं को अपवित्र मानते थे, उन्हें अस्पृश्य कहा गया। सभ्य समाज की तुलना में अत्यधिक पिछड़ी हुई जातियां, जो निश्चित क्षेत्र में निवास करती है तथा एकांत निवास में जिनका विकास नहीं हो पाया है उन्हे अनुसूचित जातियां कहा गया है। इसके अतिरिक्त लुहार, चमार, नाई आदि जातियों को भी दलित कहने में कोई आपत्ति नहीं है।

दलित साहित्य –

हिंदू धर्म ने जिन्हें बहिष्कृत माना, हजारों सालों से जिनपर अन्याय हुआ है, जिनको रौंदा गया है, निचोड़ा गया है, जिनको मनुष्य के रूप में जीने के लिए नकारा गया है, जिनसे जीने का हक छिना गया है। ऐसे शोषितों के अन्याय के खिलाफ सबसे पहले आवाज उठायी महात्मा ज्योतिबा फुलने। परंतु दलितों का प्रतिकार करने के लिए सर्वप्रथम विद्रोह किया डॉ. बाबसाहब आंबेडकरजी ने। दलितों को मानसिक गुलामगिरी से मुक्त करने के लिए उनका अस्तित्व, आत्मभान जागृत करने के लिए उन्होंने समाचार पत्रों में सतत लेखन किया। शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की। औरंगाबाद का मिलिंद महाविद्यालय दलित आंदोलन की कर्मभूमि बन गयी। इस महाविद्यालय में बोधी मंडल की स्थापना हो गई। इसी मंडल के तहत छात्रों को लिखने की प्रेरणा प्राप्त हुई परिणामस्वरूप आज 'दलित साहित्य' का साहित्य में विशिष्ट स्थान बन गया है।

1948 में 'दलित साहित्य संघ' की स्थापना की गई। उसमें 'दलित साहित्य' का शब्दप्रयोग सर्वप्रथम मिलता है। वैसे दलित साहित्य समालोचन 12 सितंबर 1953 व दलित साहित्य की अनावस्था 28 फरवरी 1955 में 'जनता व जयभीम' साप्ताहिक में आप्पा रणपिसे के लेख प्रकाशित हुए। 1 मार्च 1958 में 'प्रबुद्ध भारत' का दलित साहित्य विशेषांक प्रकाशित हुआ और फिर दलितों का पहला साहित्य सम्मेलन मुंबई में हुआ।

इस प्रकार डॉ. आंबेडकरजी के नेतृत्व में अस्पृश्यता को नकारने का आंदोलन शुरू हुआ और दलितों के मुक्ति संग्राम में दलित साहित्य का जन्म हुआ। दलित साहित्य किसे कहे? इस पर थोड़ा सा विवाद तो छिड़ गया था। लेकिन फिर भी 'दलित साहित्य' को परिभाषाओं में बांधने का प्रयास कई विद्वतजनों ने किया है--

- नरहर कुरुंदकर – " हर मनुष्य को स्वातंत्र्य, प्रतिष्ठा और निडर सुरक्षितता मिलनी चाहिए। इस भूमिका से निर्माण हुई एक जीवन दृष्टि साहित्य में अभिव्यक्त हो रही है, उसे मैं दलित साहित्य मानता हूँ ।"

- बाबूराव बाबुल – "जिस साहित्य को सम्यक परिवर्तन अभिप्रेत है वह जो साहित्य क्रांति का सामना करता है वह दलित साहित्य है।"

- प्रा. केशव मेश्राम– " हजारों सालों से जिन पर अन्याय हुआ है उन अस्पृष्यों को हम दलित कहेंगे व उसी वर्ग की लेखकों द्वारा निर्मित साहित्य को दलित साहित्य कहा जा सकता है।

- डॉ. शरणकुमार लिंबाले – "दलितों का दुख, परेशानी, गुलामी, कौटुंबिक अधःपतन, विपन्नावस्था, उपहास के साथ ही दरिद्रता में जीवनशैली का चित्रण करने वाला साहित्य अर्थात दलित साहित्य है। 'आह' का उदित स्वरूप अर्थात दलित साहित्य। "
- रमणिका गुप्ता – " दलित की पीड़ा और उनके आक्रोश का साहित्य दलित साहित्य है, जो पूरी सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन कर समता, भाईचारे की व्यवस्था कायम करना चाहता है। "

इस प्रकार दलित साहित्य को अनेक विद्वानों ने परिभाषा में बांधने का प्रयास किया है।

डॉ. बाबासाहब आंबेडकर ने 2 मई, 1954 में नागपुर में विदर्भ साहित्य संघ में साहित्य संबंधी साहित्यकारों का मार्गदर्शन करते हुए कहा था- "उदात जीवन मूल्य व सांस्कृतिक मूल्य अपने साहित्य से

अविष्कृत कीजिए। अपना ध्येय संकुचित, मर्यादित मत रखिए, उसे विशाल बनाइए। अपनी वाणी चार दीवारों तक सीमित न रखकर उसका विस्तार कीजिए। अपनी कलम अपने प्रश्नों तक ही बंदिस्त मत रखिए। उसके तेज से गांवों का गहरा अंधेरा दूर होगा ऐसा उसे परावर्तित कीजिए। अपने इस देश में उपेक्षितों का, दलितों का विश्व काफी बड़ा है, इसे कभी मत भूलना। उनका दुख उनकी व्यथा समझ लीजिए, जान लीजिए और अपने साहित्य के द्वारा उनका जीवन उन्नत, प्रगत करने के लिए कार्यरत रहिए।"

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर साहित्यकारों को साहित्य का उद्देश्य, स्वरूप व कार्य समझाते हैं और उनके मूल्यों को ध्यान में रखने के लिए कहते हैं।

यह सबको विदित है कि मराठी साहित्य जगत में दलित साहित्य अपना अलग मंच बना चुका है। मराठी दलित साहित्य से प्ररेणा लेकर हिंदी में दलित साहित्य लिखना प्रारंभ हुआ। दलित साहित्य को हिंदी में लाने का श्रेय कमलेश्वर, श्री महीपसिंह, डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर को दिया जा सकता है। जिन्होंने क्रमशः 'सारिका' अप्रैल-मई 1975 और 'संचेतना' 1980 के दलित विशेषांक निकाले और उनमें मराठी- दलित लेखकों की रचनाएं प्रकाशित की। परिणामस्वरूप सन 1980 के आसपास हिंदी में भी आंबेडकर की विचारधारा पर चलनेवाले साहित्य का आविर्भाव हुआ। इसके पूर्व आंबेडकरजी को समर्पित साहित्य का हिंदी में अभाव है परंतु गैरदलित लेखकों द्वारा दलितों पर लिखा गया साहित्य अधिक मात्रा में उपलब्ध होता है। मराठी साहित्य संसार में अनेक विद्वान दलित का संकुचित अर्थ ग्रहण करते हुए-- "दलितों द्वारा दलितों के लिए दलितों पर लिखा गया नकार और विद्रोह का साहित्य ही दलित साहित्य मानते हैं। परंतु हम दलित का व्यापक अर्थ ग्रहण करते हुए हिंदी में दलित साहित्य की जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करेंगे।

आदिकाल **: –** हिंदी साहित्य का आदिकाल युद्धों एवं आक्रमणों का काल था। अतः इस काल का साहित्य आक्रमण व युद्धों के वर्णनों से भरा पड़ा है। इस काल के राजाश्रित कवि अपने-अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिए काव्य रचना करते थे। इस युग में मात्र राजाओं की स्तुति उनके युद्ध की शौर्यगाथा लिखी मिलती है। राजाश्रय और धर्म से विमुख होकर रचना करनेवाले कवियों की प्रतिभा के विकास के अवसर नहीं थे। इस युग के कवियों का ध्यान सामान्य जनता की ओर नहीं गया। उनकी पुकार वे साहित्य में नहीं उतार सके।

भक्तिकाल **: –** भक्तिकाल में सर्वप्रथम संत कवियों का ध्यान दलित वर्ग की ओर गया। इस युग में कबीर ने दलित वर्ग की पीड़ा को समझा। वर्ण-व्यवस्था पर कड़ा-लिखा प्रहार किया। उनकी वाणी ने क्रांति की चिंगारी बनने का काम किया। विश्वबंधुत्व की भावना को प्रतिष्ठापित करते हुए जाति-पाति के भेदभाव की आलोचना की, वे कहते हैं--

"जाति-पाति पूछे नहिं कोई

हरि को भजे सो हरि का होई।"

"एके बूंद एकै मलमूत्तर एक चाम एक गुदा

एक जाति से सब उत्पन्न को ब्राह्मण को सूदा।"

दलित साहित्य की स्पष्ट रूपरेखा वास्तव में रैदास और कबीर से प्रारंभ होती है। रैदास वर्णव्यवस्था के प्रखर विरोधी थे। रैदास एक व्यक्ति नहीं एक विचार हैं, एक क्रांति हैं। उन्होंने जातिव्यवस्था को मानवता पर कलंक घोषित किया है क्योंकि यह मानवता को खा जाती है।

"जांत-पांत के फेर मंहि, उरझि रहि सब लोग

मानुसता को खात है, 'रैदास' जात का रोग।"

दलित साहित्यकारों मे सर्वोच्च स्थान रैदास का है। वे सभी मानवजाति को समान मानते हैं।

सगुण भक्तिधारा में महाकवि तुलसीदास वर्ण व्यवस्था को मानते भी हैं लेकिन वर्णभेद को वे भक्ति के द्वारा तोड़ते हैं। यदि राम का भक्त अवर्ण है तो भी वह सवर्ण से बढ़कर है। ऐसे कितने ही अवर्ण हैं जो राम के प्रिय है। केवट, कोल, किरात, शबरी, वानरजाति आदि सभी तुलसी की दृष्टि में पूज्य है। तुलसी के यहाँ मनुष्य की सार्थकता इस बात में बताई गई है कि वह जात-पात, धन,धर्म, घरबार त्यागकर राम को हृदय में बसा ले।

"जाति-पांतधनु धरमु बड़ाई।
प्रिय परिवार सदन सुखदाई,
सब तजि तुम्हहि रहई लढ लाई।
तेहि के हृदय रहदु रघुराई।।"

"एक लोहा पूजा में राखत, एक पर बाधक परो
ये भेद पारस नहि मानत, कंचन करत खरो। "

"मोरे जाति-पाति न चाहाँ काहू की जाति पाति"

रीतिकाल **: –** रीतिकाल भोग-विलास का युग था। सुरासुंदरी की आराधना इस युग की मुख्य विशेषता थी। राज्याश्रित कवियों ने अपने आश्रयदाताओं को चमत्कृत करने तथा उनको रिझाने के लिए काव्य रचना की। इन कवियों का वर्ण्य विषय नायिका भेद, नखाशिख, अलंकार इनके माध्यम से श्रृंगार का प्रतिपादन किया। डॉ. शिवकुमार शर्मा के अनुसार - "रीतिकालिन कवि की समस्त अंतः चेतना, सुरा, सुंदरी और सुराही के इर्द-गिर्द चक्कर लगा रही थी। दरबारी वेश्याओं तथा रक्षिताओं के मणि मंजीर की मधुर ध्वनि को छोड़कर वह विशाल जन- कोलाहल को सुनने के लिए कभी भी बाहर नहीं निकला।" अत: हम कह सकते हैं कि इस युग के कवियों को जनसामान्य के दुख-दर्द से कोई सरोकार नहीं था। इस काल में दलितों को साहित्य का विषय नहीं बनाया गया।

आधुनिक काल **: –** हिंदी साहित्य का आधुनिक काल जनजागरण का काल है। सन 1914 में दलित समस्या को लेकर लिखी गई हिरा डोम की पहली कविता 'अछूत की शिकायत' 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। उसके बाद हरिऔध स्नेही, चण्डीप्रसाद आदि कवियों ने दलितों के दुःख दर्द और पीड़ा को अपनी लेखनी से मुखरित किया। इसके बाद दलितों को साहित्य में स्थान दिया जाने लगा। नागार्जुन, निराला, रामकुमार वर्मा, मुक्तिबोध दिनकर, रामशेर बहादुर, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, धर्मवीर भारती और अज्ञेय आदि विद्वानों ने दलितों की दयनीय स्थिति का चित्रण किया, लेकिन उनमें चेतना जागृत

नहीं की। यह कार्य स्वयं दलित कवियों ने सन 1980 के आसपास आरंभ किया। इन साहित्यकारों में डॉ. प्रेमशंकर, डॉ. सोहनपाल, डॉ. चंद्रकांत बरठे, डॉ. एन सिंह, रघुनाथ 'प्यासा' आदि प्रमुख हैं।

दलित वर्ग का दिल दहलानेवाला वर्णन करने वाले सवर्ण साहित्यकारों में प्रेमचंद अग्रणी हैं। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से सवर्णों और अवर्णों के बीच रोटी-बेटी का संबंध स्थापित किया। अकेले प्रेमचंद की दर्जनों कहानियां हैं जिनमें दलितों का जीता जागता चित्र है। इस दृष्टि से 'कफन', 'सदगति', 'ठाकुर का कुआं', 'दूध का दाम', 'पूस की रात', 'मंदिर', 'सवासेर गेहूं' आदि कहानियां महत्वपूर्ण हैं। प्रेमचंद जी का उपन्यास 'रंगभूमि' में सूरदास अंधा भिखारी और चमार जाति का है। साहित्य को इतना बड़ा दलित नायक कभी नहीं मिला था। 'उग्रजी' ने 'बधुआ की बेटी' उपन्यास भंगी जाति पर लिखा। भंगियों का काशी के विश्वनाथ मंदिर में प्रवेश तथा अपने अधिकारों के लिए किया गया संघर्ष इसकी अपनी विशेषताएं हैं। इसी जाति पर अमृतलाल नागर ने 'नाच्यौ बहुत गोपाल' उपन्यास लिखा, जो इस जाति की विसंगतियों का चित्र उपस्थित करता है। सियाराम शरण के 'नारी' में जो सर्वाधिक रूप से दलित रही है उस पर आधारित एक मर्मांतक उपन्यास है। 'शेखर एक जीवनी' में अछूत समस्या का आंशिक चित्रण है और उसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। 'मैला आंचल' में संथालों के संघर्ष और 'परती परिकथा' में निम्नवर्ग की महिलाओं के दैहिक शोषण के चित्र उपस्थित किए हैं। श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्यात्मक उपन्यास 'राग दरबारी' में शनिचर रात-दिन मुखिया की चाकरी करता है बदले में उसे भरपेट भोजन और तन ढंकने के लिए पर्याप्त वस्त्र नहीं मिलता। शैलेश मटियानी की 'बोरीवली से बोरीबन्दर तक' वेश्याओं के जीवन की यथार्थ झांकी प्रस्तुत करते हुए शरीर बेचने के लिए उनकी विवशता को अभिव्यक्त करता है। 'कोर्ट मार्शल' में स्वदेश दीपक जी ने रामचंदर का जीवन-संघर्ष व्यक्त किया है।

प्रसाद के 'बेड़ी', 'चुड़ीवाली', 'मधुआ' आदि कहानियां दलित साहित्य की श्रेष्ठकृतियां हैं। आशीष सिन्हा की 'आदमी' कहानी में ठेकेदार, अधिकारी वर्ग और सिपाही आदिवासियों का यौन शोषण करते हैं। श्रम और यौन शोषण करते हैं। रामदरश मिश्र की 'सर्पदंश' में ग्रामीण सामंती व्यवस्था के द्वारा किया जानेवाला शोषण तथा दलितों के संघर्ष एवं विद्रोह को मुखरित किया गया। है। मधुकर सिंह की कहानी 'हरिजन सेवक' में सामंतों और सरकारी कर्मचारियों द्वारा हरिजनों का शोषण दिखलाया है। मार्कण्डेय की 'हलयोग' में दिलतों पर किए गए सवर्णों का अमानवीय एवं क्रूरतापूर्ण अत्याचारों का दर्दनाक चित्रण है। हृदयेश की 'मनु' कहानी ब्राह्मणों और दलितों के संघर्ष की कहानी है। गंगाप्रसाद की 'गंगालाभ' एक महान रचना है। डॉ. अनुज प्रताप सिंह कृत कहानी संग्रह 'डामर रोड' आदिवासियों के हाहाकार को व्यक्त करनेवाली कृति है। रमणिका गुप्ता की 'बहुजुठाई' शोषण के खिलाफ संघर्ष की कहानी ओमप्रकाश वाल्मिकी की 'सलाम' कहानी संग्रह में दलित जीवन-संघर्ष और उनकी छटपटाहट को व्यक्त किया है। दलित महिला कथाकारों में कुसुम वियोगी की 'अंतिम बयान' सुशीला टाकभौरे की 'सिलिया' उषाचंद्र की 'लोकतंत्र' में बकरी आदि कहानियों में दलितों का आक्रोश व विद्रोह सर्वत्र है।

कविता में मैथिलीशरण की किसान, सियाराम शरण की एक फल की चाह, रामचंद्र शुक्ला 'सरस' की अछूत की आह आदि कविताएं स्मरणीय हैं। निराला की विधवा, विधुक, वह तोड़ती पत्थर, अधिवास आदि में दलितों की जीवन व्यथा का चित्रण है। 'झिंगुर' संविधान की छाया मैं उमाशंकर मिश्र 'उमेश' द्वारा लिखित दलित साहित्य की महान कविता है। इनके अतिरिक्त अनेक ऐसी कृतियाँ हैं जिनमें दलित मानव की पीड़ा और वेदना को साहित्यक अभिव्यक्ति मिली है और उनको जागृत बनाने के प्रयास किया गया हैं।

आत्मकथा में मोहनदास नैमिशराय के 'अपने अपने पिंजरे' ओम प्रकाश की 'जूठन' जैसी आत्मकथा में भोगे हुए सच को उजागर किया है। दया पवार द्वारा मराठी में लिखित 'बलुत' आत्मकथा

का हिंदी में अनुवाद 'अछूत' नाम से डॉ. दामोदर खड़से ने किया है। दलित जीवन का सार्वजनिक अनुभूति इसमें वर्णित है। दलितों के नरकतुल्य जीवन की गाथा इसमें वर्णित है। 'आठवणींचे पक्षी' सोनकांबळे की आत्मकथा का अनुवाद डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे 'यादों के पंछी' नाम से किया है। उसमें सोनकांबळे शिक्षा में आनेवाले समस्याओं का जीवंत चित्रण करते हैं। इसके अतिरिक्त भी कई दलित आत्मकथाओं का अनुवाद हिंदी में हुआ है। जैस मुक्काम पोस्ट देवाचे गोठणें-- माधव कोंडविलकर (अंत्यज) अक्करमाशी- शरणकुमार लिंबाएँ (अक्कर माशी) कोल्हाटयाचे पोर-किशोर शांताबाई काळे ('छोरा कोल्हाटी का) आदि।

धीरे-धीरे दलित साहित्य के आयाम व्यापक हो रहे हैं.. "हर एक मनुष्य को स्वातंत्र्य, सहज प्रतिष्ठा और भयशून्य सुरक्षा मिलनी चाहिए। इस भूमिका में से निर्माण हुई एक प्रवृत्ति साहित्य में अभिव्यक्त हो रही है। 'दलित' साहित्य मनुष्य को केंद्रबिंदु मानता है, मनुष्य के सुख- दुख में समरस होता है। मनुष्य को महान मानता है। मनुष्य को क्रांति की और ले जाता है।
है।""

दलित साहित्य की विशेषताएं **::--**

1. वेदना**: –** दलितों के आंतरिक दुखों को शब्द में साकार करनेवाला 'दलित' साहित्य है। उनके साहित्य से व्यक्त होती है युग-युग की चिरवेदना। युग-युग से हिंदू धर्म ने जिन्हें अस्पृश्य माना, जिन्हें गांव के बाहर रहने के लिए बाध्य किया और उन्हें हीन जीवन जीने के लिए विवश किया, धर्म और संस्कृति के नामपर उनके जीने के सब हक छीने गए और उनका जीवन पशु से भी बदतर बनाया गया। ऐसे लोगों की कलम साहित्य में मुखरित हो गई है। हजारों सालों से दलितों को सत्ता, संपत्ति और प्रतिष्ठा से वंचित रखा गया। पैदा होते ही उन्हें अस्पृश्य और अपराधी माना गया। दलित इस व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह न करे इसलिए उसे धर्म का अधिष्ठान दिया गया। व्यवस्था ईश्वर ने निर्माण की है। यह भावना लोगों के दिल में भर दी गई। अतः दलितों के अन्याय अत्याचार सहते हुए ही जीने के लिए बाध्य होना पड़ा। "डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के विचार एवं कार्य से दलित समाज को अपनी गुलामी का एहसास हुआ। उनकी वेदना को वाणी मिल गई क्योंकि इस मूक समाज को बाबासाहब के रूप में 'मूकनायक' मिला। दलितों की वेदना ही दलित साहित्य की जन्मदात्री है। यह वेदना एक व्यक्ति की नहीं अथवा वह एक दिन की नहीं यह वेदना हजारों की है, हजारों वर्षों की है इसलिए वह व्यक्त होते समय समूह स्वरूप में व्यक्त होती है। दलित साहित्य की वेदना यह 'मैं' की वेदना नहीं वह पूरे बहिष्कृत समाज की 'वेदना' है। इसलिए इस वेदना का स्वरूप सामाजिक बना हुआ है। अतः हम कह सकते हैं कि अस्पृश्यों के अंतरंग की अथांग दुख वेदना की अभिव्यक्ति दलित साहित्य में हुई है।

2. नकार **: –** दलित साहित्य प्रस्थापित समाज व्यवस्था को नकारता है। परंपरागत जीवनमूल्यों, पुरानी सड़ी-गली मान्यताएं इन सभी को दलित साहित्य ने नकारा है। विषम व्यवस्था को नकारकर दलित साहित्य स्वातंत्र्य, समता और बंधुत्व की मांग करता है।

रमणिका गुप्ताजी ने लिखा है-- "भगवान भाग्य पूर्वजन्म का फल, पुरानी परंपराएं, विकृत रुढ़ियां, हिंदुत्ववाद का आडंबर, दो मापदंडोंवाली भारतीय संस्कृति और उसकी उच्च जातियों के अहम्, दंभ तथा स्वार्थ को महिमा मण्डित करती हुई उनकी गौरव गाथाएं, चमत्कार, मनगढंत इतिहास, शास्त्र पुराण, स्मृतियां, श्रुतियां और आर्यों द्वारा भारत के मूल निवासियों को असूर राक्षस कहकर अपमानित करने की योजनाबद्ध ऐतिहासिक साजिश तथा शूद्रों के शास्त्र- सम्मत परंपरागत शोषण का नकार है।" दलित

तो स्वयं 'नकार' में पैदा हुए, पले बढ़े, है। परंतु अब से नकार को नकार से ही काटेंगे।" इतिहास ने दलितों को केवल अंधकार दिया इसलिए उनके साहित्य में नकार दिखाई देता है। जातिव्यवस्था, वर्णव्यवस्था को वह नकारता है, उसे जकड़नेवाली अस्पृश्यता, दास्यता, धर्मसत्ता, धनिकसत्ता का वह निषेध करता है। अन्याय, अत्याचार, तानाशाही, अंधश्रद्धा, पुराणकथा, कर्मठ विचारों को वह नकारता है।

प्रा. केशव मेश्राम नकार भूमिका स्पष्ट करते हैं-- "आसपास की परिस्थिति व उसके ज्ञान से दलित समाज पूर्णयता झूक गया। लेकिन जब वह जागृत हुआ, जान गया कि जो मुझपर लादा गया बोझ है वह बोझ यत्किंचित भी मेरा नहीं, इसे उखाड़ फेंकना चाहिए। इसी नये आकलन से एक प्रखर 'नकार' का जन्म होता है।

मोहनदास नैमिशराय ने ईश्वर के अस्तित्त्व पर भी प्रश्न चिह्न लगाया है। वे कहते है कि –

" ईश्वर कि मौत उस पल होती है
जब मेरे भीतर उठता है सवाल
ईश्वर का जन्म किस माँ कि कोख से हुआ
ईश्वर का बाप कौन है ? "

3. विद्रोह**: --** वेदना और नकार के बाद दलित साहित्य विद्रोह करता है। यह विद्रोह दलितों की वेदना से पैदा हुआ है। युग-युग से शोषित, वंचित समाज से बहिष्कृत, मृतप्राय दलितों को मनुष्यता का एहसास होकर उनमें स्वाभिमान जागृत होने लगा। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरजी ने कहा था- "पढ़ो संघटित बनो और संघर्ष करो।" दलित पढने लगे, संघटित होने लगे और शोषण के खिलाफ संघर्ष भी करने लगे। इनमें आत्मसम्मान जागृत हुआ। आंबेडकरजी ने कहा था "गुलामों को उनके गुलाम होने का एहसास करा दो वे अपने आप जंजीरें तोड़ देंगे।" और ठीक वैसे हुआ उनमें जब गुलामी को एहसास जागा तब वे विद्रोह कर उठे, दलितों का यह विद्रोह विशिष्ट जाति के लिए नहीं, बल्कि यह विद्रोह अस्तित्व के लिए है। और यह संघर्ष प्रतिगामी प्रवृत्ति के विरुद्ध जारी ही रहेगा।

प्रा. ताराचंद खांडेकर कहते हैं-- "दलित साहित्य का विद्रोह मात्र प्रतिकार नहीं, मात्र प्रतिशोध नहीं, मात्र नकार भी नहीं, बल्कि जो-जो कल्याणमय है उन सभी के निर्मिति के लिए वह विद्रोह है।" दलितों का यह विद्रोह वर्णव्यवस्था के विरुद्ध है। वर्णव्यवस्था को माननेवाले धर्म के विरुद्ध है। मानवता के अधिकारों को नकारनेवाले कंवल भारती अपना विद्रोह, व्यक्त करते हैं --

"जो मुक्ति संग्राम लड़ा था तुमने
वह जारी रहेगा उस समय तक
जब तक कि हमारे
मुर्झाएँ पौधे के हिस्से का सूरज
उग नहीं जाता।"

4. मानव दलित साहित्य का केंद्रबिंदु **: –** दलित साहित्य का केंद्र बिंदु 'मानव' है। वहीं आदि मध्य और अंत है। मनुष्य के विचार के बिना दलित साहित्य आगे बढ़ ही नहीं सकता। दलित मनुष्य का दाहक जीवनानुभव इस साहित्य से प्रकट होता है। साहित्यकारों ने दलितों की व्यक्तिगत संवेदनाओं की अनूठी बारीकियां प्रस्तुत की है। ओम प्रकाश वाल्मिकी अपनी कविता 'बस्स बहुत हो चुका' में कहते हैं--

"मुंह अंधेरे बुहारी गई सड़क में

जो चमक है--
वह मैं हूँ....
खेत की माटी में
उगते अन्न की खुशबू
मैं हूँ । "

आगे अपनी कुंठा और कुढन को वे सरल शब्दों में व्यक्त करते हैं--

"कभी नहीं मांगी बलिश्त भर जगह
नही मांगा आधा राज भी
मांगा है सिर्फ न्याय...
थोड़ा सा बचपन थोड़ा सा अपनापन
जब-जब भी कुछ मांगा
वे गोलबंद होकर टूट पड़े।
मैं आवाक!"

पहले विश्व का रचयिता ईश्वर माना गया लेकिन आज विश्व रचना का केंद्रबिंदु मानव है। यह विचार आगे रहा है। आज मानव का अंतर्विश्व व बाह्यविश्व उद्‌धवस्त हो रहा है इसलिए उसके मन में असहाय अकेलेपन की भावना बढ़ रही है। इस वैफल्यग्रस्त अवस्था से मनुष्य को बाहर निकालने के लिए दलित साहित्य को इन्सानियत का मूल्य स्पष्ट करना पड़ेगा। दलित साहित्य को अभिप्रेत मानव शोषण रहित समाज का मानव है। जहां धर्म, सत्ता व ईश्वर के नाम पर शोषण होता है, वहाँ मानव प्रगति नहीं कर सकता। घृणा, तुच्छता, अहं, शत्रुता, अविश्वास, स्वार्थ आदि के कारण उसे पूरी तरह निचोड़ लिया था। इसलिए दलित साहित्य को अभिप्रेत है। 'स्वतंत्र मानव'।

5. मिथक भंजन **: –** दलित साहित्यकारों ने पौराणिक मिथकों को बेनकाब कर सत्य को उजागर किया है। पुराने मिथकों, प्रतीकों को तोड़कर नये प्रतीकों का सृजन हो रहा है। रमणिका गुप्ता कहती हैं-- “आज अनुभवजन्य और यथार्थ पर आधारित साहित्य अपने दृष्टिकोण से स्वयं को रच रहा है। वैसे साहित्य की अभिव्यक्ति के लिए नये मिथक, नये बिम्ब, नयी भाषा जो आक्रोश को व्यक्त कर सके, यहां तक कि नयी विधा और नया सौंदर्यशास्त्र भी गढ़ा जा रहा है, ताकि वह इन नयी चेतना का वाहक बन सके। "

समय के साथ मिथकों की वर्णित शाश्वतता झूठी पड़ती जा रही है। हिंदुओं की पौराणिक साहित्य के बारे में दलित कटु प्रतिक्रिया व्यक्त कर रहे हैं। गुरु एकलव्य का अंगूठा काटकर भी 'गुरु' बने रहे। पत्नी को गर्भावस्था में त्यागने वाले श्रीराम सभी दृष्टि से 'आदर्श' रहे। पत्नी को जुए में हारकर भी युद्‌धिष्ठिर धर्मराज कहलाए।
मलखान सिंह शिवलिंग मिथकों को ध्वस्त करते हुए लिखते हैं --

"हम जब भी

तेरे कदमों में सर रखने की सोचते हैं
तेरी धरती में गड़ा स्थूल लिंग
अग्रज एकलव्य का कटा अंगूठा प्रतीत होता है हमें । "

इस प्रकार साहित्यकारों ने मिथकों के तिलस्म को उखाड़ फेंका है।

6. भूख **: –** दलित साहित्य 'भूख' को अधिक महत्व देता है। 'भूख' का एहसास वैश्विक है। भूख की आग में झुलसनेवाले लोग चोरी करने के लिए प्रवृत्त होते हैं। भूख से बेहाल स्त्री देहविक्रय के लिए मजबूर हो जाती है। भूख के आगे सभी तत्वाज्ञान फिका है। इसलिए भूख की समस्या को दलित साहित्य में स्थान मिला है।

" मरी भैस पर टूट पड़े थे भूखे नंगे लोग
कोई टांग लेकर भाग रहा था, कोई पुंछ मरोड़ रहा था
कोई सिंग उखाड़ रहा था।
औरते झगड़ रही थी
एक दूसरे पर कीचड़ उछल रही थी
छिनरी... गुजरी... चोट्टी आदि शब्द एक दूसरे से टकरा रहे थे।

7. भाषा **: –** दलित साहित्यकारों ने साहित्य के लिए शिष्टसम्मत भाषा को नकारकर दलितों के रोजमर्रा जिंदगी की भाषा का उपयोग किया हैं। जिसके कारण दलितों के जीवन की यथार्थता सामने आती है। कहीं-कहीं अश्लील भाषा का भी प्रयोग आवश्य हुआ है। लेकिन उसी भाषा के कारण उनका आक्रोश, पीड़ा, संस्कृति जीवनशैली आदि का सूक्ष्म एवं सक्षम रूप सामने आता है। शिष्टसम्मत भाषा इन प्रवृत्तियों को अभिव्यक्त कर ही नहीं पाएगी। जिस परिवेश और स्थिति में समाज का यह वर्ग रहा है उसी परिवेश की भाषा का व्यवहार करके ही समाज अपनी बात कह सकता है। रमणिका गुप्ता ने कहा है-- "इस साहित्य को दलित लिखता है और वह भुक्तभोगी होता है, यानी वह वंचनाओं, निषेधों प्रतिबंधों और अपराधों के बीच जिन्दा रहने का आदी होता है। इस साहित्य को वह लिखता है जो यथार्थ की जमीन पर खड़ा है। कल्पना के आकाश पर नहीं। इसलिए उसकी भाषा कुलीन नहीं है। कुलीन भाषा इस काबिल नहीं कि दलित की जिन्दगी के खुरदरेपन को समेट सके... कुलीन भाषा और उसका साहित्य या तो स्वान्तः सुखाय लिखा जाता रहा है या फिर चाटुकारिता में अपने लाभ के लिए जबकि दलित साहित्य एक लक्ष्य रखता है। इस प्रकार दलितों की भाषा अपने जीवन संग्राम की भाषा है और अपने उद्देश्य में सक्षम है।

संदर्भ ग्रंथ **-**

1. दलित चेतना साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार- रमणिका गुप्ता
2. दलित साहित्य : काही विचार अस्मितादर्श, जनवरी-फरवरी-मार्च, 1973
3. दलित साहित्य: वेदना आणि विद्रोह-- भालचंद्र फडके
4. दलित साहित्य की भूमिका – हरपाल सिंह

5. दलित दखल – डॉ. श्योराज सिंह बेचेन, डॉ. रजत रानी 'मीनू'
6. दलित साहित्य मे दलित साहित्य के उन्नायक, डॉ. एन सिंह, रमणिका गुप्ता
7. 'आम्ही' दिवाळी अंक, 1976-- नामदेव ढसाल
8. दलित पँथर्स का घोषणा पत्र- 'दलित कौन', पृष्ठ 25
9. दलित साहित्य सम्मेलन नागपुर, अध्यक्षीय भाषण- 1976, वानखेडे म. ना.
10. दलित साहित्यच्या निमित्ताने, सत्यकथा, जुलै, 1970- सदाक हाडे मनाठी से अनुवाद
11. भारतीय दलित साहित्य- बाबूराव बागूल के संदर्भ में , डॉ. नारायण रणसुभे, उल्लासनगर, 26-27-28 सितंबर, 2005